आओ माँ! हम परी हो जाएँ

रोहिणी अग्रवाल

हिन्दी ADDA

आओ माँ! हम परी हो जाएँ

मीना ने चारपाई के नीचे से घसीट कर बक्सा अपनी ओर खींच लिया है। छाँट कर दो फ्रॉकें निकाल लीं। एक नारंगी और एक गुलाबी। गुलाबी रंग कित्ता तो फबता है उस पर। बाबू जी कहते हैं, मेरी गुलाबी गुड़िया। और बाँहें फैला कर उनके सीने से जा

लगती है वह - 'बाबू जी, बाहर घुमा लाओ न! मेरी सहेलियों ने सरकस देख भी लिया है। इत्ते बड़े-बड़े भालू। पता है, साइकिल चलाते हैं। हमने तो सिरफ डुगडुगीवाले मदारी बाबा का बुड्ढा भालू देखा है - बस, टाँगें उठा कर खड़ा हो जाता है। ऐस्से...। कोई नाच हुआ? उससे अच्छा नाच तो बंदर कर लेता है। सच्ची बाबू जी, ले चलो न! पता है, वहाँ शेर भी है। सच्ची-मुच्ची का असली शेर। ऐसे आग में कूदता है कि हाय दइया! बाबू जी, हमें-तुम्हें वो कुछ नहीं कहेगा। वो उसका मालिक होता है न, क्या कहते हैं उसे, रिंग मास्टर, उससे डरता है। वो कहेगा, 'सिट' तो बैठ जाएगा, डॉक्टर अंकल के टॉमी की तरह।'

बाबू जी ने हँस कर उसे पीठ पर झुला लिया - 'हाँ, हाँ, ले चलेंगे। अभी दफ्तर में बहुत काम है न।'

वह ठुनक गई थी - 'हमें पता है, हमेशा बहाना बना कर टाल देते हैं। पिछली बार जादू का खेल दिखाया? सब ने, सब्भी ने देखा। बस, हमें नहीं दिखाया।' वह रुँआसी हो गई।

बाबू जी ने पीठ से उतार कर उसकी नन्हीं-नन्हीं हथेलियों को अपने खुरदरे हाथों में कस लिया - 'अब की प्रॉमिस। पक्का वादा। बीस दिन बाद आएगा नया महीना। फिर चलेंगे मिल कर चारों।'

मीना हँस दी - 'बाबू जी, माँ, मुन्ना और मीना।' और आठ बरस के मुन्ना की उँगली पकड़ कर बाहर भाग गई, 'चल मुन्ना, तितली पकड़ें।'

गुलाबी फ्रॉक मीना ने बक्से में धर दी। सारी फ्रॉकों के नीचे। बक्से का ढक्कन बंद कर वापिस चारपाई के नीचे खिसका दिया। उठी। चारपाई से तौलिया उठाया। नहा कर स्कूल के लिए तैयार होना है। आज का दिन सारी लड़कियों के लिए खास होता है। शनीचर है न आज। महीने का चौथा शनीचर। आज वर्दी पहन कर न जाओ तो बहन जी कुछ नहीं कहतीं। आज के दिन सारी लड़कियाँ रंग-बिरंगी तितलियाँ लगती हैं - बड़ी बहन जी ने कहा था एक बार। वह फुदकने लगी थी तब। मन हुआ था पंख फैला कर फूल-फूल के पास जा कर कहे - मैं आ गई। आओ, खेलें। आओ, गाएँ।

मीना नहानघर से वापिस लौट आई, बिना नहाए। बेसब्री से चारपाई के नीचे से बक्सा घसीटा। बेचैनी से खोला। जाने क्या छूट गया था। जाने क्या ढूँढ़ना था। तेजी से सारे कपड़ों को गठरी बना कर भींच दिया। गुलाबी फ्रॉक बक्से की तली में मुस्करा रही थी।

'मैं जानती थी तुम आओगी मुझे लेने। आओ मीना।'

मीना ने बहुत प्यार से उसे उठाया। सहलाया। सीने से लगाया। जाने क्या बतकहियाँ थीं जो चुप-चुप चल रहीं थीं। मीना की आँखें भर आईं। फ्रॉक मुट्ठी में भींच ली उसने और तली पर बिछे अखबार के नीचे दफन कर दी।

'लो! लो!' गठरी बने कपड़ों को नोच-नोच कर फेंकती रही उस पर, मानो हथौड़े से कील ठोंक रही हो - 'लो! लो! हो गया न तुम्हारा ताबूत तैयार! फिर कभी सिर निकाला तो...!' मीना की आँखें आँसुओं से लबालब भर उठीं। झिलमिल आँसुओं में इंद्रधनुष के सातों रंग झिलमिला गए। फिर बन गई फ्रॉकें - लाल, पीली, नारंगी, गुलाबी, नीली, बैंगनी, चटक जामुनी, उजली गोरी सफेद फ्रॉकें नाचने लगीं - ता थै तत त्था.. थिरकते पैरों में बँधे रुनझुन घुँघरुओं ने उन्हें शाबाशी दी - हाँ हाँ, झूमो न! ऐसे... ऐसे... और खूब-खूब घेरेवाली फ्रॉकें हुलस-हुलस कर गोलाइयों में फैल गईं ज्यों छतरियाँ तन गई हों - नाचती-फुदकती।

मीना हमेशा माँ से जिद लगा कर बैठ जाती थी - 'थोड़ा और घेरा न, माँ। नाचते हुए घुमेरी खाते हैं तो पता है फ्रॉक का घेरा कितना फैल जाता है? इतना।' उसने हाथ से घेरा बनाया। नहीं, इससे भी बड़ा।

'पता है माँ, लड़कियाँ कहती हैं, जिसका घेरा जितना ज्यादा फैलेगा, बड़े हो कर उसे उतना ही सुख मिलेगा।'

माँ ने सिलाई मशीन का हत्था रोक कर उसकी तरफ देखा - 'अच्छा!'सूई से धागा निकल गया था शायद। आँख गड़ा कर धागा डालते-डालते कहा - 'जाने कहाँ-कहाँ से बेसिर-पैर की बातें सुन कर आती है।'

'सच्ची माँ।' मीना ने गले को दो उँगलियों से कस कर जैसे कसम खा कर बात की सच्चाई जुटानी चाही हो। फिर क्या तो सोच कर चुपा सी गई। एकटक मशीन पर झुकी माँ को देखती रही - 'तुम बहुत तंग घेरवाली फ्रॉक पहनतीं थीं, माँ?'

माँ चौंक गई। 'अरे! आज तो आखिरी शनीचर है न? '

'हाँ।' पराँठे को दाँतों से कुतरते हुए मीना ने अनमना-सा जवाब दिया। आज उसे कटोरदान नहीं ले जाना है। जल्दी छुट्टी हो जाएगी न! पहले तो...

'फिर आज स्कूल की वर्दी क्यों पहन ली? बाकी कपड़े क्या हुए?'

मीना ने कुछ नहीं कहा। सिर्फ घूर कर माँ को देख लिया। फिर अपने को। आसमानी रंग का कुर्ता, सफेद सलवार और पिन से टाँका सफेद दुपट्टा। छिः! माँ ने भी मीना की नजर से मीना को ताका। 'ठीक है। ठीक है। नए कपड़े बनवा देंगे। बस, चार दिन ही तो रह गए हैं नया महीना आने में। जैसे ही तनखा मिलेगी, सबसे पहले तेरे दो सलवार-कुर्ते बनवा दूँगी।'

मीना बस्ता उठा कर गली में आ गई। चार दिन रह गए हैं। तब बाबू जी ने क्या कहा था - बीस दिन रह गए हैं। नए सलवार-कुर्ते क्यों? सरकस क्यों नहीं? वह मचलना चाहती है। रूठ कर बाबू जी के सीने में जा दुबकना चाहती है - मुझे सरकस जाना है। आपने वादा किया था। बाबू जी की पीठ पर लद कर वह अपनी हर जिद पूरी करना चाहती है। लेकिन बाबू जी हैं कि...। बाबू जी ऐसे क्यों हो गए हैं? इतने पराए-पराए? किसी और के बाबू जी से। उसे देखते हैं तो पता नहीं कैसी नजरों से देख कर दूसरे कमरे में चले जाते हैं। जिद में आओ तो ठंडी आवाज में धमका देंगे - 'बड़ी हो गई हो। बच्चों की तरह ठुनकना शोभा नहीं देता।' और वह वहीं जम जाती है। चाहती है पूछे, क्या मैं अकेली ही बड़ी हुई हूँ? मेरे साथ-साथ क्या आप भी बड़े नहीं हुए? मुन्ना बड़ा नहीं हुआ? बड़े होने से क्या मैं आपकी बेटी नहीं रही? या आप मेरे बाबू जी? वह अपने आँसुओं को जब्त करके एक सवाल तो कर ही डालना चाहती है कि बाबू जी, अगर मैं बड़ी हो भी गई तो बताओ, इसमें मेरा क्या कसूर है? वह हर कसम खा कर उन्हें विश्वास दिला देना चाहती है कि वह कतई 'बड़ा' नहीं होना चाहती थी। कि उसे पता

होता, बड़े होने के बाद छोटा होना कैसे हुआ जाता है तो वह जरूर-जरूर छोटी हो जाती। जिस बड़े होने से वह खुद, माँ, बाबू जी, सारा घर दुखी हो जाए, ऐसा बड़ा होना उसे कभी-कभी नहीं चाहिए। लेकिन सबकी सारी फरियाद क्या भगवान सुनता है?

पहली बार जब मीना आसमानी कुर्ता, सफेद सलवार और पिन से टँका सफेद दुपट्टा पहन कर स्कूल गई, सहेलियाँ सकते में आ गई थीं।

'तू भी?' उन्होंने कुछ जल्दबाजी में कहा था, कुछ नाराजगी में और शायद थोड़ी-सी हिकारत से - 'इतनी जल्दी?' और अपने-अपने बस्ते ले कर कुछ दूर सरक गईं थीं, मानो छुतैली हो वह। छू गई तो वे भी...। उसका मन हुआ था बुक्का फाड़ कर रो पड़े। जात-बाहर! वह तो तरसती निगाहों से उनकी फ्रॉकों के घेर देख रही थी। नाचेंगी तो तितलियों-सी उड़ने लगेंगी। और मैं? बाँस-सी सीधी! तनी! छूँछी! 'बड़ी' लडकियों ने उसे पनाह दी थी। पहले बस्ता सँभाला। फिर उसे।

'कोई बात नहीं। सबके साथ होता है।' उन्होंने उसे पुचकारा था। मीना रो पड़ी थी। इसलिए नहीं कि सहेलियों ने उससे कन्नी काट ली थी। इसलिए कि अब वह भी 'बड़ी' लड़की बन गई थी। बड़ी लड़की। फ्रॉकों में उड़ती वे तितलियाँ इन 'बड़ी' लड़कियों को हिकारत से देखतीं थी। पता नहीं क्यों? वे उन्हें अजूबा लगतीं थीं। और अजनबी।

'इनके साथ ज्यादा बात नहीं करनी चाहिए।'

'क्यों?'

'ये गंदी होती हैं।'

'गंदी! कैसे?'

'पता नहीं। माँ कहती हैं।'

'सुन।' एक फुसफुसाहट।

'पता है, इन्हें खून आता है।'

'हैं!' चिहुंक कर वे चारों बिखर गईं थीं। समझ नहीं आया, च्च च् कर दया करें, दइया रे! कह कर हैरानी जताएँ या चीख कर डर जाएँ। बस, किया यह कि मुक्ति की गहरी साँस भर ली। शुकर भगवान का। मैं गंदी नहीं।

मीना चाह कर भी वह दिन भूल नहीं पाती। काला! राक्षसी दिन! वह तो उस दिन भी और दिनों की तरह बेफिक्री से उठी थी। मस्ती में नहाई थी। लापरवाही से मैले कपड़ों को नहानघर में ही फेंक कर ठुनकते हुए दूध पीती रही थी। कूदती-फाँदती स्कूल गई थी और नाचती-दौड़ती घर लौटी थी - 'भूख! भूख!' बस्ता वहीं फेंक कर वह सीधे चौके में घुसी थी। माँ ने रोज की तरह आँखों ही आँखों में प्यार से उसे नहीं छुआ था। जरूर बाबू जी से लड़ाई हुई होगी। वह सहम गई थी। माँ को गुस्साना ठीक नहीं। पटरा खींच कर उसने चुपचाप खाली थाली माँ के आगे सरका दी।

'परस दो।' उसने नहीं, थाली ने कहा। माँ ने परस दिया। फिर लछमन रेखा खींच थाली उसकी ओर ठेल दी - 'ले! खा ले! फिर बात करनी है तुझ से।'

उसने रोटी की ओर हाथ बढ़ाया तो भक् से लछमन रेखा जल उठी। माँ का इतना पीला निचुड़ा चेहरा! बाबू जी से लड़ाई हो तो माँ लाल-लाल दीखती है। ज्यादा ही बड़बोली। सिर्फ जुबान नहीं, हाथ-पैर भी बोलने लगते हैं, चूड़ियाँ और पायल भी। माँ ने उसका हाथ खींचना देख लिया। उसका पोर-पोर बोल पड़ा - 'एक ही दिन में औरतों की तरह नखरे करने भी सीख लिए। सारी उम्र कम थी इस नरक में घिसटने की जो इतनी जल्दी आ मरी।'

मीना सिर्फ ताकती रही। उल्लुओं की तरह। जरूर कुछ गड़बड़ बात है।

'अब खेलने-कूदने के दिन खतम हो गए तेरे। बड़ी हो गई है तू।'

'मैं तो जितनी कल थी, उससे बस एक ही दिन बड़ी हुई हूँ माँ।'मीना ने माँ को याद दिलाना चाहा - अभी कल ही तो माँ कह रही थी बाबू जी से, बच्ची है, सरकस ले जाना। अब नहीं देखा तो कब देखेगी? और आज... माँ का हिसाब बड़ी गड़बड़ चीज है। पता नहीं क्यों, नाना ने ज्यादा क्यों नहीं पढ़ाया।

'एक दिन ही बड़ी हुई होती तो रोना काहे का था री नासपीटी। तू तो पूरी एक उमर बड़ी हो गई। औरत बन गई री तू, औरत!'

'औरत!'वह फिक्क से हँस दी। माँ अगर सख्त-सख्त मुँह बना कर उसे डराने का नाटक करेगी तो वह सचमुच डर थोड़े ही जाएगी।

'औरत तो वो होती है न माँ जो बिंदी-सुर्खी लगा कर, मेहँदी रचा कर, चमकीली जरीदार लाल साड़ी पहन कर बन्ने के पीछे-पीछे चादर की गाँठ से बँधी रोती-रोती सासरे जाती है।'

'और फिर जो रोती है तो जिंदगी भर आँसू थमते नहीं।'

मीना को बात समझ नहीं आई। लेकिन बोझ कहीं उड़ गया। साथ ही उड़ गई लछमन रेखा। थाली सीधी अपनी गोद में रख ली और बड़े-बड़े कौरों में रोटी निगल भाग जाने को हुई - 'मैं बाहर जा रही हूँ खेलने।'

माँ ने कस कर हाथ पकड़ लिया - 'कहा न, खेलना-कूदना बंद। धम-धम उछलना बंद। सुबह-शाम अँधेरे में घर से निकलना बंद। लड़कों-मर्दों से घुलना-मिलना बंद।'

मीना को लगा माँ कह रही है - हँसना बंद! चहकना बंद! खिलना बंद! साँस लेना बंद!

मीना ढीठ सा मुँह बना कर कमरे में चली आई। आने दो बाबू जी को। क्या समझती हैं माँ। ऐसी शिकायत लगाऊँगी कि...। बाबू जी आए। माँ ने पहले ही झपट लिया उन्हें। फुस-फुस! फुस-फुस! कित्ती देर! माँ की तो आदत है जरा-सी बात को खींच-खींच कर फैलाने की। पड़ोस की मिश्रा आंटी की बात ऐसे चबा-चबा कर बताएँगी कि बाबू जी झल्ला जाते हैं - 'औरतों की बातें! शैतान की आंत की तरह बढ़ती ही रहेंगी क्या? मेरा सिर न खाओ भई। दो घड़ी चैन ले ले आदमी, सो भी इन औरतों को मंजूर नहीं।' बाबू जी उसे और मुन्ना को दुलार कर माँ को भगा देते हैं। लेकिन आज... माँ ने शायद मिश्रा आंटी की जगह कोई और बात शुरू की है। बाबू जी के लिए नई बात। इसलिए तो इतने ध्यान से सुन रहे हैं। लो, उनका चेहरा भी लटक गया। हो गई छुट्टी। अब बाबू जी के पास जा कर मार थोड़ेई न खानी है। मीना दाँत से नाखून कुतरती जस की तस

बैठी रही। आज घड़ी चल ही नहीं रही। रात भी तो नहीं आ रही। वही आ जाती तो मजबूरन दिन को चले जाना पड़ता। बच्चों का हो-हल्ला कानों को चीर रहा था।

'बोल मेरी मछली, कितना पानी?'

'गोडे-गोडे पानी।' मीना ने खिड़की से झाँक कर देखा - गोडे-गोडे पानी में तैरती मछलियाँ... फिर गले-गले पानी में तैरेंगे... फिर... खिड़की के सींखचों पर उसके हाथ कस गए। जमीन में जड़े पैर लरज रहे थे। जरा भी पानी नहीं। समूची देह थरथरा उठी। पानी नहीं तो वह जिएगी कैसे? पैर-पैर पानी होता तो भी... जल बिन मछली की तरह उसकी देह फड़फड़ा उठी।

'बाबू जी, सरकस ले चलो न!' नया महीना आने में अभी सात दिन हैं। लेकिन मीना अधीर हो उठी है। वह क्लास की 'बड़ी' लड़कियों से, खिड़की के ठंडे काले सींखचों से, सलवार-कुर्ते-दुपट्टे के नागपाश से मुक्त हो कर भालू, शेर, हाथियों और बंदरों के साथ उस दुनिया में खो जाना चाहती है जहाँ सब बराबर होते हैं। कोई बड़ा-छोटा नहीं होता। जहाँ सब मीत होते हैं, कोई 'गंदा' नहीं होता। बाबू जी ने न न की, न हाँ। बस, प्यार से घुड़क दिया - 'बड़ी हो गई, मोई। बच्चों-सी हरकतें शोभा नहीं देतीं।'

मीना को घुड़की भरा प्यार नहीं चाहिए। प्यार भरा प्यार!

बड़ा होने पर बहुत-सी भली चीजें छिन क्यों जाती हैं?

आज शनीचर है न। इसलिए आधी छुट्टी में ही पूरी छुट्टी हो गई है। कुछ लड़कियाँ एक-दूसरे को धकियाती स्कूल के बड़े गेट से निकल कर सबसे पहले सड़क पर आने की होड़ में लगी हैं। कुछ भाग कर उस नीम के पेड़ के नीचे जमा हो गईं हैं। पीटीआई बहन जी और म्यूजिक बहन जी वहाँ कुर्सियाँ लगवा रही हैं। गुरु जी अपने साजिंदों के साथ आ गए होंगे। जरूर बड़ी बहन जी के कमरे में चाय पी रहे हैं। चार लड़कियाँ मिल कर बड़ी-सी पेटी ला रही हैं। म्यूजिक बहन जी ने ढक्कन खोला तो शहद की मक्खियों की तरह सब उस पर टूट पड़ीं। जल्दी-जल्दी अपनी पसंद के घुँघरुओं पर कब्जा जमा लो। बाद में आने पर गूँगे घुँघरू मिलते थे। पैर हिलाओ और छनन छन छनन छन का नाद न फूटे तो घुँघरू पहने न पहने। मीना मरभुक्खों की तरह पेटी पर नहीं टूटती थी।

बाबू जी ने पार साल उसे नए घुँघरुओं का जोड़ा ला कर दिया था। क्लास में फर्स्ट आई थी न। बाबू जी ने जुबान दी थी - 'जो माँगेगी मिलेगा। लेकिन बेटा, बाप की हैसियत देख कर माँगना।' मीना शाबाश औलाद है। बाबू जी को तंग क्यों करती? उसने कहा - 'बाबू जी, घुँघरू। वो लता है न मेरी सहेली... और निशा। दोनों नाच सीखती हैं। ता थै ता थै - नाचती हैं तो मेरा भी मन होता है नाचने को। ऐसे...' उसने फ्रॉक का घेर फैला कर सहेलियों से सीखी नाच विद्या का नमूना पेश किया तो बाबू जी हँस दिए - 'हो हो! राजा बेटा नाच सीखेगा। जरूर भई।' और उन्होंने घुँघरू ला दिए थे। साथ ही नाच सीखने की अतिरिक्त फीस भी - 'राजा बेटा की खुशी में हमारी खुशी।' मीना की आँख में एक नन्हा-सा तरल मोती झिलमिला गया। अब मुन्ना राजा बेटा बन गया है। वह तो बड़ी हो गई है न। बेटी भी नहीं रही। औरत! माँ कहती है।

मीना के बस्ते में पड़ा घुँघरुओं का जोड़ा गेट के पास आ कर अड़ गया - नहीं, उधर चलो। देखो न, गुरु जी ने तबले की थाप पड़ते ही ताली बजा कर ता थै ता थै कहना शुरू कर दिया है। मुझे बाँधो मीना। घुँघरु झनन झन झनन झन झनझनाने को बेचैन थे। मीना न बाँधती तो खुद झुक कर उसके पैरों में लिपट जाते। मीना ने सुन लिया। सुन कर अनसुना कर दिया। घुँघरू जोर-जोर से बज उठे। मीना ने उनके होंठों पर उँगली रख दी - 'अच्छे बच्चे!'

वे अच्छे बच्चे नहीं थे। घुँघरू थे। सो झनझनाने लगे - झनन झन! झनन झन! झनझनाते रहे।

मीना को लगा सिर धुन रहे हैं। माथा पटक रहे हैं। पत्थरों पर। चट्टानों पर। धरती पर। लहूलुहान हो गए हैं। लहूलुहान हो गई हैं चट्टानें! पत्थर! धरती!

'अब वे चुप हो जाएँगे।' सड़क पार कर गली में आते हुए मीना ने सोचा। 'जब सारा खून बह जाएगा न, तब साथ ही बह जाएगी शोर करने लायक आवाज।'

नहीं, इतनी बड़ी-बड़ी बातें कहने-सोचने जित्ती बड़ी अभी नहीं हुई मीना। यह बात तो बाबू जी ने कही थी। ठीक यह बात नहीं। ऐसी-सी बात। उससे नहीं। माँ से। उसके

लिए। माँ जरा-सी पिघली थी - 'बच्ची ही है आखिर! साल-दो साल और सीख लेगी तो क्या बिगड़ेगा। उसके साथ की 'बड़ी' लड़कियाँ भी तो सीखती हैं।'

बाबू जी बिगड़ गए थे। जताते हुए कि उसके नाच सीखने से भला क्या-क्या नहीं बिगड़ेगा। 'मुझे अपनी लड़की नचनिया नहीं बनानी। पतुरिया की तरह कूल्हे मटकाए और लोग देख-देख कर सीटियाँ बजाएँ।'

बाबू जी यकीनन मीना को नहीं, किसी और को नाचता देख रहे थे। यकीनन सीटियाँ कोई और नहीं, खुद बाबू जी बजा रहे थे। पर यह बात कोई और नहीं जानता था। जानते थे बाबू जी। क्यों बताते किसी को?

माँ माँ की तरह पिघलती रही - 'पतुरिया की बात कहाँ से आई? स्कूल में सीखती है। सारी भले घर की लड़कियाँ हैं।'

'पतुरिया भी माँ की कोख से पतुरिया पैदा नहीं होती। भले घर की लड़की होती है।'

माँ ने जवाब दे कर जाती हिम्मत का एक कोना पकड़ लिया - 'वैसे आजकल नाच को बुरा नहीं समझा जाता। क्या कहते हैं इसे - डांस। हुनर है। जमाना बदल गया है...।'

'जमाना बदल गया है, इसलिए तो कहता हूँ लड़की पर नजर रखो।' बाबू जी गुर्राए। 'गुंडागर्दी के मारे बुरा हाल है। और कहीं इसी के पर निकल आए तो...।'

बाबू जी की गुर्राहट से माँ थर-थर काँप उठी। माँ की उँगलियों में फँसा हिम्मत का छोटा-सा कोना फिसल कर जमीन पर जा गिरा। माँ बकरी की तरह मिमियाने लगी - 'मैं तो लड़की का मन रखने के लिए कह रही थी...।'

'लड़कियों का मान बड़ा होता है। मन नहीं। समझी। रोती है तो रोने दो। रो-रो कर थक जाएगी तो आप ही चुप हो जाएगी।'

पता नहीं कब मीना घूम कर फिर सड़क पर आ गई। सड़क के पार स्कूल का गेट था। बंद गेट में छोटी-सी खिड़की खुली थी। धीरे-धीरे वह उस खिड़की तक आई। अंदर गई। नीम के पेड़ तले तितलियाँ पंख फैला कर नाच रहीं थीं। इशारे से लता को

बुलाया। उसके गूँगे घुँघरू चेहरे पर चिपके हुए थे। मीना ने बस्ते से निकाल कर अपने घुँघरू उसे थमा दिए और तेजी से गेट पार कर गई। सिर धुन-धुन कर लहूलुहान हुए घुँघरू अब खनक रहे थे। हुलस रहे थे। वे जी गए थे। 'मीना! मीना!'

लता के पैरों से लिपट कर अब वे लता बन गए। अपने को पुकारने लगे। लता! लता!

'माँ, मैं जरा देर को सामनेवाले पार्क में झूला झूल आऊँ?' आधी छुट्टी में पूरी छुट्टी हो जाने से दिन चलना भूल गया था। शायद भीड़ में उलझा किसी जमूरे के करतब देख रहा हो या भालू का नाच। हो सकता है मदारी के हाथ से डुगडुगी ले कर उसी ने भालू को नचाना शुरू कर दिया हो। दिन क्या कुछ नहीं कर सकता! उसे रोकने-टोकनेवाला कौन है? मीना दिन होती तो डुगडुगी बजा कर भालू को जरूर नचाती। इत्ता बड़ा भालू! काला! खूँखार! तुम्हारी डुगडुगी के इशारे पर नाचे, सोच कर गुदगुदी होती है न!

दिन ने पता नहीं दिन भर क्या किया। मीना अपने काम गिना सकती है। सबसे पहले उसने आते ही माँ के साथ कपड़े धुलवाए। माँ के मना करते-करते भी कपड़े निचोड़े, बाहर तार पर फैलाए। फिर झाड़ू ले कर दूर तक आँगन का पक्का फर्श धो डाला। तनिक साँस ले कर माँ के साथ मटर की फलियाँ छिलवाईं। आटा माँडा। बाद में दो-तीन मुक्कियाँ मार कर माँ ने उसे मनलायक कर लिया। बस्ता खोल कर स्कूल का काम किया। अगला पाठ पढ़ा। मुन्ना की किताबें उलटीं-पलटीं। माँ इस बीच पुलक-पुलक कर उसे असीसती रही थी - 'मेरी रानी बेटी! चाँद से राजकुमार को ब्याहेगी। सोने के झूले में झूलेगी।'

'झूला!' मीना को अचानक झूले की याद हो आई। 'माँ, मैं जरा देर को सामनेवाले पार्क में झूला झूल आऊँ?'

माँ की शायद आँख झपक गई थी। उसने फिर से दोहराया। पता नहीं, माँ कैसे सो जाती हैं। उसे तो आजकल रात को भी नींद नहीं आती। नींद आ जाए तो उसके साथ ही डरावने सपने चले आते हैं। सारे पेड़, सारे पत्थर, सारी सड़कें, सारे पिछवाड़े, सारी हवा, सारी धूल जैसे गुंडे बन जाते हैं। उससे छेड़छाड़ करने लगते हैं। और वह पिन से

टँके दुपट्टे को छातियों पर और भी कस कर, घुटने तक लंबे कुर्ते को पैरों तक लंबा खींच कर अपने को कपड़ों में छिपा लेना चाहती है। वह मीना नहीं, कोई अनचीन्ही औरत बन जाती है। फिर कपड़ों की गठरी और फिर... वह हाँफ कर नींद से उठ खड़ी होती है। मीना! मीना! अपने को आवाज दे कर वह जगा लेना चाहती है। 'तुम ठीक हो न!'अपने से बतिया कर अपने को दुरुस्ती का हाल बताना चाहती है। 'देखो, ये रही तुम्हारी बाँहें, हाथ-पैर, आँख-नाक-कान...' अपने अंगों को टटोल-टटोल कर छू-छू कर वह गठरी के हादसे को भूल जाना चाहती है।

'नासपीटी, तुरई की बेल की तरह बढ़ कर छाती पर मूँग दले जा रही है। दो घड़ी सोने की कोशिश करूँ तो वो भी जरा नहीं जाता।' माँ नींद में ही बुड़बुड़ाई - 'खबरदार, जो घर से बाहर पैर किया तो।' और नींद में डूब गईं। उन्हें विश्वास था कि 'खबरदार' मुस्तैदी से दरवाजे की चौकसी करेगा। 'खबरदार' के होते मीना की हिम्मत नहीं, चूँ तक भी कर जाए।

'जिज्जी! जिज्जी!' मुन्ना हाँफता-हाँफता दौड़ा आया। चेहरा उत्तेजना से लाल। स्वर हर्ष से काँपता हुआ। 'देखो, मेरे पास क्या है?' उसने सिकंदर के अंदाज में जिज्जी को बंद मुट्ठी दिखाई।

'क्या है?' मीना उत्सुक हो गई। बिल्कुल मुन्ना के करीब। मुन्ना की उम्र की फ्रॉक पहन कर।

'देखो।' मुन्ना ने दूसरे हाथ की ओट करते हुए बंद मुट्ठी धीरे-धीरे खोली। मीना को चटक रंग दिखे, बस। और कुछ नहीं।

'क्या है?' उसकी अधीरता बढ़ गई

'तितली।' मुन्ना की दो उँगलियों के बीच काँपती-फड़फड़ाती रंगों की पुड़िया थी। अधमरी! जीवन की याचना करती!

'मुन्ना!'

पता नहीं मीना को क्या हुआ कि जोर का झन्नाटेदार झापड़ मुन्ना के गाल पर रसीद कर दिया उसने। और कुछ समझ-बूझ कर मुन्ना रोए, उससे पहले आप ही फूट-फूट कर रोने लगी।

मीना झूले पर बैठी झूल रही है। संग-संग हवा। हौले-हौले दोनों जाने क्या बतियातीं। हवा ने कुछ कहा और खिलखिला कर भाग खड़ी हुई।

'शैतान!' मीना हँस कर झूले पर खड़ी हो गई। 'अभी चखाती हूँ मजा...।' और तेजी से शरीर एक ओर झुका कर पींगें बढ़ाने लगी। दाएँ-बाएँ... यहाँ-वहाँ... मीना और पींग! बेसुध-सी वह हवा को भूल गई। बढ़ती गई आगे... आगे... और आगे।

नीला आसमान दोनों बाँहें फैला अगवानी में खड़ा हो गया उसकी।

'आओ!' उसने पुकारा।

'अभी आई।' मीना ने पींग बढ़ा कर एक डग आगे रखा।

'बस, एक कदम और!' बूढ़ा आसमान दादा जी की तरह एक कदम पीछे सरक गया।

वह मचल उठी - पैर और शरीर एक लय में पीछे की ओर झुक कर तेजी से सीधे हो गए। 'अब पकड़ा।'

'उहूँ!' दादा जी ने अपना नीला अँगूठा दिखा दिया।

'मीना किसी भी चुनौती से घबराती नहीं। बहुत जीवटवाली बिटिया है हमारी।' अपने दोस्तों के सामने नुमाइश लगा कर बाबू जी अक्सर उसकी खूब तारीफ किया करते हैं। मीना की छाती दुगुनी चौड़ी हो जाती है और हौसला सैंकड़ों गुना। बूढ़े आकाश दादा को शायद मीना के हौसले का पता नहीं।

'अभी पकड़ लेती हूँ, दादा जी!' मीना ने रस्सियों को कस कर थाम लिया और पटरे पर सख्ती से पैर जमा दिए, 'बस, आखिरी पींग और, फिर दादा जी की गोद!'

लेकिन यह क्या! पैरों तले से पटरी ही खींच ली किसी ने। हड़बड़ा कर मीना ने शरीर का सारा वजन रस्सियों पर डाल दिया। नहीं, गिरूँगी नहीं। रस्सियाँ हैं न। उसने टूटते हौसले को पुचकारा। रस्सियाँ उलझ कर लिपट गईं उसके चारों ओर। नहीं, वे उसे सहारा नहीं दे रहीं। बाँध रही हैं। मीना चीखने को हुई। वह गिर रही है। नीचे! नीचे! और नीचे! पाताल तक सेंध लगाए अँधेरे में। बस, गिर ही तो जाएगी वह अँधेरे की अंधी दुनिया में। बन जाएगी अंधी बहरी बेजान चीज। काश! वह वक्त को लौटा सकती! दौड़ते पलों को ठहरा सकती!

'बड़ों का कहना न मानने से यही होता है।'माँ कहानियाँ सुना कर आखिर में कहा करती थी और फिर मीठी कहानी को कड़वे उपदेश की घिनौनी चादर में लपेट देती।

'कुंभीपाक नरक!' वह घिनौनी चादर खुल कर मीना के दिमाग में खट से आ लगी।

'सात-सात परदों में सिमटी रहती हैं सयानी लड़कियाँ। जानती हैं, घर से बाहर कदम रखा नहीं कि घात में बैठा राक्षस उठा कर भाग जाएगा - दूर, दुर्गम पहाड़ की बीहड़ घाटी में। कहेगा, ब्याह कर मुझसे। वरना हो जा पत्थर।'

'परियों की कहानी सुनाओ न!'

माँ कुंभीपाक नरक का ब्यौरेवार जिक्र करने लगती।

'माँ!' वह झकझोर देती माँ को। हमें नहीं सुननी ये गंदी कहानियाँ। परियों की कहानी क्यों नहीं सुनातीं?'

'क्योंकि वे झूठी कहानियाँ होती हैं।' और माँ बिना किसी अवरोध के नरक के अँधेरों और यातनाओं का, कराहों और सड़ांधों का ब्यौरा देती रहतीं।

लोहे की सख्त रस्सियों में बँधी मीना का पोर-पोर पिराने लगा है। वह कसमसा भी नहीं सकती। बस, आँख खोल कर देख सकती है, खड्ड में धम्म से गिरने में अभी कितनी देर और है। लेकिन कहाँ, अँधेरे में सिवाय अँधेरे के और कुछ दीखता ही नहीं। काश! वह कुछ सोच भी न पाती।

अचानक उजली-उजली दूधिया लकीरें उसके चारों ओर बिखर गईं और गेंद की तरह लुढ़कती उसकी लोहे-सी भारी देह को रूई की गोद ने थाम लिया। वह डर कर और भी सिकुड़ गई।

'डरो नहीं।' रूई के नरम हाथों ने उसके लोहे के सिर को सचमुच का सिर बना कर बालों को सँवार दिया - 'आँखें खोलो। देखो, मैं हूँ। परी माँ।'

मीना ने झट से दोनों आँखें खोल दीं - परी महल!

'परी माँ!' मीना मचल पड़ी - 'मुझे परियों की कहानी सुनाओगी?' माँ को बताएगी वह, परियों की कहानियाँ झूठी नहीं होतीं। वह तो सचमुच की परी माँ से मिल कर आई है। बहुत अच्छी होती हैं परियाँ। कितनी दयालु! कितनी सुंदर!

'परी माँ, तुम्हारे यहाँ सब कोई हैं - परी-रानी, परी-बहन, परी-बेटी, परी-सहेली। फिर परी-बेटा, परी-बाबू जी, परी-भाई क्यों नहीं? वे सब कहीं बाहर गए हैं क्या?'

परी माँ सिर्फ हँस दीं। मीठी-मीठी नरम हँसी। जितना हँसती, उतने ही फूल बन कर चारों ओर बिखर जाते।

'और रोओ तो मोती बन जाएँगे न आँसू।'

मीना को भूली-बिसरी कहानी याद आ गई। हाँ, लता ने ही तो सुनाई थी आधी छुट्टी में। उसने सहमति की आशा में परी माँ की ओर ताका।

'नहीं।' परी माँ का चेहरा सख्त हो गया। 'रोने से फूल झर जाते हैं, कलियाँ मर जाती हैं और झरने सूख जाते हैं।'

'अरे!' मीना सब कुछ याद कर लेना चाहती है। लता को ढेरों बातें जो बतानी हैं।

'देख तो, कैसे रोते-रोते लकीरें बन गईं हैं!'

हाँ, मेरे उड़नखटोले की हैं ये लकीरें। हवा में तिरता है न उड़नखटोला तो झूम-झूम के उसके पीछे हो लेती हैं लकीरें।'

'मरी, हर बात को दिल से लगा लेती है।'

मीना के दोनों कान अलग-अलग बात सुन रहे हैं।

'और क्या, तुम जब चाहो इन लकीरों को टेर लेना। उड़नखटोला तुम्हें लिवा ले जाएगा।'

'उठ। उठ री। पता नहीं भूखे पेट नींद भी कैसे आ जाती है?'

'आओगी न परी! मेरी नन्हीं परी। मैं राह तकूँगी तुम्हारी। कैसे नहीं आओगी भला!'

माँ का भरपूर हाथ पीठ को झुला कर हिलाने लगा तो मीना कराह कर जाग उठी - हाय! कितना बेदर्दी से गिराया है उड़नखटोले ने। परी रानी से जरूर शिकायत करूँगी। माँ ने एक बार और झकझोर दिया उसे - 'कैसी चुड़ैल-सी शक्ल बना रखी है। न पहनने का सऊर, न कंघी चोटी करने का। शकल तो जो दी है राम ने। सब मेरे करमों की सजा।'

मीना पूरी तरह चेत गई। उसको कोसते-कोसते माँ हमेशा अपने को कोसने लगती है। सच्ची! अब वह माँ के पास है। शक-शुबहो की कोई गुंजाइश नहीं। लेकिन देखो न माँ की बात! कहती है, चुड़ैल-सी शक्ल! जरूर माँ की नजर कमजोर हो गई है। परी रानी ने जादुई छड़ी घुमा कर कित्ता तो रूप दिया था उसे - झर-झर दिप-दिप करता! उजला-सुनहरा! हाय राम! वह तो किलकी मार कर गूँगी हो गई थी।

'सब का सब मेरे लिए।' इशारों से पूछा था उसने। सिर से पैर तक नहा गई थी वह। लेकिन झर-झर दिप-दिप जो बंद हुई हो।

'मैं डूब जाऊँगी परी-माँ। बस।' उसने चिल्लाना चाहा था, पर गला था कि झर-झर दिप-दिप रूप के गोले निगले जा रहा था। घबरा कर मीना ने आँख बंद कर ली थी। 'तुम्हीं हो माता पिता तुम्हीं हो, तुम्हीं हो बंधु सखा तुम्हीं हो' वह बुदबुदाने लगी। माँ ने कहा था जब मुसीबत की घड़ी आए तो भगवान का भजन कर लेना चाहिए। बस, अब तो डूबी कि डूबी। बाबू जी कहते हैं कुछ न सूझे तो गायत्री मंत्रा जप लो। ऊँ भूर्भुवः

स्व'... नहीं, वह डूब गई है। औंधी गिर गई है झर-झर दिप-दिप रूप के सोते में। अभी मुँह-नाक-कान तक पानी भर आएगा और वह डुब्ब! मीना ने आँखें खोल दीं।

हाय दइया! आँखें खुलीं तो अपनी ही काया देख विश्वास नहीं हुआ। 'ऐल्लो! सिंड्रेला की कहानी सच्ची हो गई।'

'हाँ, मेरी भोली बच्ची!' परी माँ ने उसे गले लगा लिया था।

मीना घबरा कर चारपाई से उठ बैठी। अगर सिंड्रेला की कहानी सच हो गई तो...। कोयले की कोठरी की सीलन भरी ठंड ने उसे जमा दिया।

'शीशा!' वह तड़प उठी अपनी सूरत निहारने।

'चुड़ैल-सी शक्ल!' माँ ने रोज की तरह आज भी कहा है उसे। आँखे बंद किए-किए वह शीशे के सामने आ खड़ी हुई।

'तुम मुझमें हो।' शीशा हँस दिया। 'हिम्मत है तो पहचानो खुद को।'

मीना ने जोरों से सिर हिला दिया। रुंधी आवाज में कुछ कहा ही नहीं गया। चाहती थी कहे, तुम चुपके से कान में फुसफुसा दो न कि मैं कैसी हूँ।

शीशा भाँप गया। 'डरो नहीं। तुम सिर्फ मुझे देखो।'

'नहीं, मैं आँख खोलूँगी तो चुड़ैल को देखूँगी।'

शीशा मनुहार करता-करता हार गया। 'तुम चुड़ैल नहीं हो मीना।'

'माँ ने क्यों कहा? माँ डाँटती-फटकारती है। पर झूठ नहीं बोलती।'

'मीना!' शीशे ने मीना का हाथ पकड़ कर दुलारना चाहा। लेकिन उसने हाथ झटकार दिया।

'तुम जाओ। मैं रोना चाहती हूँ। फूट-फूट कर रोना। मैं अकेली हूँ। मुझे अकेला छोड़ दो।'

शीशा चुप हो आया। अकेली मीना अकेलापन चाहती है। वह उसकी आरजू पूरी करेगा। लेकिन रो क्यों रही है? रोए तो नहीं। रोने से झर-झर दिप-दिप अंदर का तेज रीतता है न। 'भूल गईं? परी-माँ ने क्या कहा था?' शीशे ने उसे चेताना चाहा। मीना ने न सुनना था, न सुना।

'मैं कितने आँसू बटोरूँ? कितने सहेजूँ? बटोर-सहेज कर रख भी लूँ तो वापिस तुम्हें तो नहीं दे पाऊँगा। एक बार जो हाथ से निकल गया, उसे क्या दुबारा पाया जा सकता है?'

'मीना!' 'मीना!' वह चुप नहीं रह सकता। दो कदम आगे बढ़ आया। फिर दो कदम और। मीना सुन ही नहीं रही उसे। देख नहीं रही। शीशा और आगे बढ़ गया और समा गया उसकी दोनों आँखों में। मीना की आँखों के आगे लहरा गया झर-झर दिप-दिप रूप का दरिया। अब की दूना। दुहरा। वह रोते-रोते हँस पड़ी। 'मैं हूँ न वही। नन्हीं परी। परी माँ की परी बच्ची। अरे!' वह ताली बजा कर नाच उठी - 'मेरे तो पंख भी हैं। मैं उड़ सकती हूँ।' उसने पंख फैलाए तो हाथ-पैर जैसे हल्के हो कर लुप्त हो गए। वह तिरने लगी सर-सर फिक-फिक हँसती हवाओं में।

'अरी नासपीटी, क्या चरित्तर रचा रही है शीशे के आगे खड़े हो कर। लाज हया तो है ही नहीं आजकल की लड़कियों में। कुलच्छनियाँ पता नहीं क्या-क्या दिन दिखाएँगी।' माँ जमाने भर का गुस्सा ले कर उस पर बरसती रहती है।

मीना को लगा माँ के मुँह से मोगरे के फूल झर रहे हैं - 'बेटी! मेरी तो सारी उमर कट गई इस चारदीवारी में। क्या-क्या नहीं सहा। क्या-क्या नहीं देखा। बड़भागी रही तो किसी दिन बाहर की दुनिया देख सकूँगी वरना तो पता नहीं...'

मीना ने माँ को दोनों बाँहों में भर लिया। हाँ, ऐसे मैं माँ को ले कर उड़ सकती हूँ।

माँ का दिल भर आया। भीतर था कुछ जो पसीजने लगा, धीरे-धीरे, 'मैं तुझे नहीं कोसती री। अपने को कोसती हूँ। अपने औरत होने को।'

'माँ, तुम मेरे साथ चलोगी?'

'अभागी, तुझे देखती हूँ तो अपना बचपन याद आ जाता है। मरी, मेरी कोख में ही आना था तो लड़की बन कर क्यों आई? क्यों री, जब तक सामने रहेगी, आँसू नहीं सूखने देगी?'

मीना ने सुना - 'क्यों री, अपनी परी माँ से नहीं मिलवाएगी?'

तत्परता से सिर हिला दिया उसने - 'हाँ माँ, क्यों नहीं। पता है, परी लोक में सब परियाँ होती हैं। बस, परियाँ और परियाँ।'

माँ की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे।

'छिः! रोते नहीं माँ।' मीना ने आँसुओं से अपनी अँजुरी भर ली।

'रोने से फूल झर जाते हैं, कलियाँ मर जाती हैं और झरने सूख जाते हैं।'